श्रीः ।

कवित्त-गङ्गालहरी

पं. नन्दलाल विरचित.

प्रकाशक,

हरिप्रसाद भगीरथजीके

पुस्तकालयके अध्यक्ष

श्री· व्रजवल्लभ हरिप्रसाद

मुद्रक,

चिं० सं० देवळे. ५४ कांदेवाडी-मुंबईवैभव स्टीम

प्रेस-मुंबई.

शके १८३३ संवत १९६८ २·००

अथ

कवित्त-गंगालहरी।

श्रीगणेशाय नमः।

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि त-
न्महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खंडपरशोः ॥
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु ॥१॥

सोरठा।

गंगापद शिर नाय, गायचहूँ गुन ताय के ॥
जगन्नाथ कविराय, बानी अगवानी किये ॥ १ ॥
हाँ ह्वैहहि यद्यपि क्रूर, दूर भाव जिनसों भयो ॥

गंगभावसों पूर, मूर न हँसैं मुहि कूर को ॥ २ ॥
कूर कवी नृप रंक, अंके मात के सम लखे ॥
तासों भयो निशंक, लहिहुँ कृपा जगँनाथ सी ॥ ३॥
भाषारसिक सुजान, अंग अंग उच्छाह भरि॥
गंगास्तुति मन मान, धरि हैं काव्य करि हैं कृपा ॥४॥
दोहा-भाषारसिकन प्रेरणा, शीश धारि नँदलाल ॥
सुठिं विचारि कवितन करै, गंगालहरि रसाल॥ १ ॥
कवित्त-ए री जगमैया दै दुहैया मैं कहहुँ तेरो,
वारी सारी वसुधा को बढ्योसो सुहाग है।
लीला सों जनैयाजग गिरिकेबसैया को जो,
कोईक अकत्थ बडो ऐश्वरजभाग है ॥
श्रुतिन को सरवस्व पुनि सुकृतिन को जो,
सुठि तनुधारी भारी सुकृत हू जाग है।
सुधा हू सों सौंदरज जाहि सेयाँ होत अंज,
हरहु हमारे दाग सो निशेषभाग है ॥ १ ॥.

१ कदापि। २ गोद। ३ धारण करैंगे। ४ जल। ५ पृथ्वी। ६ महादेव। ७ वेदोंका। ८ पुण्यात्माओंका। ९ पुण्य। १० अमृत। ११ जन्ममरणरहित। १२ पाप। १३ संपूर्ण।

दरिद्राणां दैन्यं दुरितमथ दुर्वासनहृदां
द्रुतं दूरीकुर्वन् सकृदपि गतो दृष्टिसरणिम् ॥
अपि द्रागाविद्याद्रुमदलनदीक्षागुरुरिह
प्रवाहस्ते वारां श्रियमयमपारां दिशतु नः ॥ २ ॥

कवित्त-मार्ये[1] तुव जल के प्रवाह के अथाह गुन,
गाथ कहुँ दृष्टिमध्य एक बार आये सों।
दीननकी दीनता कों बीन पुनि दुष्टबास-
ना सों दुष्टहृदिन के पापनबिलायें सों ॥
आनं ना शरण जग तैसो ढूंढ़ि देख्यो गंगे[2],
अंग अंग फूलि कहूँ ता शरण आये सों ।
अखिलअविद्याद्रुमछेदन[3] कों दीक्षागुरु[4],
देओ सो प्रवाह मो अथाह संपै[5] जाये[6] सों ॥ २ ॥

उदंचन्मार्तंडस्फुटकपटहेरंबजननी
कटाक्षव्याक्षेपक्षणजनितसंक्षोभनिवहाः ॥

---

१ हे माय। २ हे गंगा। ३ संपूर्ण अज्ञानरूप वृक्ष छेदनेको। ४ मंत्रगुरु।
५ संपत्ति। ६ पुत्र।

भवंतु त्विंगंतो हरशिरसि गंगातनुभुव-
स्तरंगाः प्रोत्तुंगा दुरितभयभंगाय भवताम् ॥ ३ ॥

कवित्त—सौत निजमौतसम हेरंबे[1] की अंबे[2] तोहि,
ठानि चित्त नित्तसुख गयो मनभायो है ।
ताही सों उद्योतसूर्यजोतसम नेत्रकोर,—
जोर दरसायो मानूं प्रलैकाल आयो है ॥
तासों निजमन छन भयवेग उपजायो,
पुनि शिवशिरमध्य खलभलो छायो है ।
ऊंचे ऊंचे उठि गंगे[3] तुव जल के तरंग,
निजजनपापभय बेगसों नसायो है ॥ ३ ॥

तवाऽऽलंबादंब स्फुरदलघुगर्वेण सहसा
मया सर्वेऽवज्ञासरणिमथ नीताः सुरगणाः ॥
इदानीमौदास्यं भजसि यदि भागीरथि तदा
निराधारो हा रोदिमि कथय केषामिह पुरः॥४॥

---

१ गणेशकी । २ माता अर्थात् पार्वती । ३ हे गंग ।

कवित्त–मांय तुव गोद पाय अतिगर्व दरशाय,
सहसा अमरगन तिरस्कृत कीनो है ।
अंबे मोहिं पापी चींन उदासीनताई कीन,
गही बाँह छाडि है तौ शर्ण कौन चीनो है ॥
भागीरथि निराधार मैं संसारपारावार,
कर्णधारहीनो जिमि नाव सिंधु चीनो है ।
तौंय जो को आन चीनो मम तारबेकों [10]बीनो,
तौ मैं ताके आगै रोबे फेंटं कसिलीनो है ॥ ४ ॥

स्मृतिं याता पुंसामकृतसुकृतानामपि च या
हरत्यंतस्तंद्रां तिमिरमिव चंद्रांशुसरणिः ॥
इयं सा ते मूर्तिः सकलसुरसंसेव्यसलिला
ममांतःसंतापं त्रिविधमपि पापं च हरताम् ॥५॥

कवित्त–मानुष जनम धारि जिन ना छुयो तो [12]वारि
अरु आन सुकृतहु टारि टारि दाये सों ।

---

१ हे माय ! । २ बिनाविचारे । ३ देवगण । ४ हे अंब । ५ आश्रय । ६ हे भागीरथि ! ७ संसारसमुद्र । ८ मलाहके बिना । ९ और । १० ढूंढ्यो । ११ कमैर । १२ जल ।

तिनकी अंतरतंद्रा अंधकार जिमि चंद्रा,
हरत हमेश ज्यों रमेशगुन गाये सों ॥
सकलसुरनसेवनीय तुव जलरूप,
मूरति की स्फुरति सो हृदैमध्य आये सों।
अंतःकर्ण के संताप मैयाँ रु त्रिविधपाप,
हरो सो हमारे निज बारे जाँनपाये सों ॥ ५ ॥

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा
विलोलद्वानीरं तव जननि तीरं श्रितवताम् ॥
सुधातः स्वादीयः सलिलमरमातृप्ति पिबतां
जनानामानंदः परिहसति निर्वाणपदवीम् ॥६॥

कवित्त-जो जो जन जग राजकाज कौं बिसारि तृण,
जिमि पुनि सेवैं बेतसीले तोरे तीर कौं।
अरु अंजलिन भरि सुधा सौं स्वादिष्ठ तुव,
तृपत तृपत पीवैं पुनि पुनि नीर कौं ॥

---

१ अंत-करणका अज्ञान। २ भगवान्के गुण। ३ अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव। ४ हे मैया। ५ कायिक, वाचिक, मानसिक। ६ अपना बालक। ७ जाननेसों। ८ वेतसवृक्षोंवाले। ९ अमृत। १० बहुत स्वादवाला।

उन उन जनन के आनंद की कोटिकोटि,
छोटे छोटे कह हँसैं मुंक्तिरहगीर कों ।
मायँ गुन गाय गाय तोहि कों रिझाय कहुँ,
देओ सों आनंद मोहिं नंदवा अधीरकों ॥ ६ ॥

प्रभाते स्नातीनां नृपतिरमणीनां कुचतटी-
गतो यावन्मातर्मिलति तव तोयैर्मृगमदः ॥
मृगास्तावद्वैमानिकशतसहस्रैः परिवृत्ता
विशंति स्वच्छंदं विमलवपुषो नंदनवनम् ॥७॥

कवित्त–मांय तोमैं न्हायबे को पुण्य कौन कहै गाय,
जासों इमि इचरज भूपन की भामिनी ।
ऊँचे ऊँचे कुचनपै मृगमदकीच सींच,
रैन मैनचैन भोगि उठि गजगामिनी ॥
प्रात हरिगुन गावैं तुव नीके बाँरि न्हावैं,
जल बूडि आवैं मानों नभमध्य दामिनी ।

---

१ किरोडांपंक्ति । २ मुक्तिमार्गमें चलनेवाले । ३ हे माय । ४ नंदलाल पुत्र को लाडसे माता नंदवा कहती है । ५ हे माय । ६ कामसुख । ७ जलमें । ८ बिजुली ।

ज्यौंहीं मृगमद जल मिल्यो त्यौंहीं मृगडारै,
देवरूप धार भई इंद्रवनगामिनी ॥ ७ ॥

स्मृतं सद्यः स्वांतं विरचयति शांतं सकृदपि
प्रगीतं यत्पापं झटिति भवतापं च हरति ॥
इदं तद्गंगेति श्रवणरमणीयं खलु पदं
मम प्राणप्रांतर्वदनकमलांतर्विलसतु ॥ ८ ॥

कवित्त—सुमिरन करबे सों शांत चित्त कर्नहारो,
बेग सों हरन हारो पाप भवताप कों ।
एक बार मनलायो गायो गंगानाम तुव,
कानन मैं कमनीय निदरै अलाप कों ॥
भागीरथि भवभय भंजबे कों आन नाहिं,
तासों योही पद गुन्यो मुनियन जाप कों ।
प्रानन पयान के भयानक समयमध्य,
लसौ गंगानाम मुख मेरे जाचों आप कों ॥ ८ ॥

---

१ कस्तूरी । २ मृगपांकियां । ३ प्रिय । ४ गानेका भेद आलाप होता है जिसमें सप्तस्वर ही कहेजाते हैं । ३ हे भागीरथ । ४ प्राणोंके निकलते समय अर्थात् मरनेके समय । ७ शोभित हो ।

यदंतः खेलंतो बहुलतरसंतोषभरिता
न काका नाकाधीश्वरनगरसाकांक्षमनसः॥
निवासाल्लोकानां जनिमरणशोकापहरणं
तदेतत्ते तीरं श्रमशमनधीरं भवतु नः॥ ९॥

कवित्त–प्रबलसंतोषभरी जौन काली कागडार,
तीर तोरे खेलत निंदैरै नाककीर हो।
नंदनैआनंद भोगिबे कों याकों जाचै इंद्र,
तऊ न तजत तीर तोरो दिलगीर हो॥
कामन के भागन कों नागन के ईश बिना,
कहिसकै कौन जौन कविन मैं वीर हो।
जनन मरन शोक हरन कों हरिरूप,
भूप ज्यों समर्थ श्रमशमक सो तीर हो॥ ९॥

न यत्साक्षाद्वेदैरपि गलितभेदैरवसितं
न यस्मिञ् जीवानां प्रसरति मनोवागवसरः॥

---

१ चाहे स्वर्गका सूवा (तोता) क्यों न हो। २ स्वर्ग बागका आनंद। ३ श्रम (खेद) दूर करनेवाला।

निराकारं नित्यं निजमहिमनिर्वासिततमो
विशुद्धं यत्तत्त्वं सुरतटिनि तत्त्वं न विषयः ॥१०॥

कवित्त-गयो जासोंभेद ऐसे वेद सों न निरुणित,
अरु वरणित नहिं व्यासाऽऽदिमुनिन सों।
निराकार नित्य निजमहिमास्वयंप्रकाश,
व्यापक आकाशजिमि ध्येय योगीगन सों ॥
बुद्ध रु॰विशुद्ध अनिरुद्धआदि जाके अंश,
वंशन के भूषन न चिंत्यो जाय मन सों ।
ऐसो जो पूरण ब्रह्म ब्रह्मा जानै उपजायो,
सो तू ही है माँय गायोगयो यों मुनिन सों ॥ १० ॥

महादानैर्ध्यानैर्बहुविधवितानैरपि च य-
न्न लभ्यं घोराभिः सुविमलतपोराशिभिरपि ॥
अचिंत्यं तद्विष्णोः पदमखिलसाधारणतया
ददाना केनासि त्वमिह तुलनीया कथय नः ११

कवित्त-हयं गैंज पालकी तुलादि महादान अरु,

१ ध्यान करने योग्य। २ हे माय। ३ घोड़ा। ४ हाथी।

ध्यान बहुभांतिके यागन के करन सों।
भवफाँसीनाशी घोर सुठि तेपराशीन के,
समुझि समुझि पुनि पुनि आचरन सों ॥
मिलत न जौन भागीरथि तौन अविचिंत्य,
विष्णुपद सुलभ तो कृपा के करन सों।
यांसों तुव तुलना कों कौन कहुँ जगमाहिं,
है री तूं ही कह तुव चरनपरन सों ॥ ११ ॥

नृणामीक्षामात्रादपि परिहरंत्या भवभयं
शिवायास्ते मूर्तेः क इह महिमानं निगदतु ॥
अमर्षम्लानायाः परममनुरोधं गिरिभुवो
विहाय श्रीकंठः शिरसि नियतं धारयति याम् १२

कवित्त-माँय तुव जल न्हायबे को फल दूर रहो,
दरश परश सोंही भव कों हरत है।
ऐसी तुव मंगल मनोहर मूरति,

---

१ यज्ञ। २ बहुत तप। ३ हे भागीरथि। ४ नहीं चिंतन करनेमें आवे ऐसा। ५ बराबरी। ६ यहां अतिस्नेहसे तूंकारा है। ७ हे माय।

महिमा कों नाहिं कवि उचरन कों करत है ॥
जासों तुव गुनंगन शितिकंठ मन गुन,
रोषभरी गिरिजा सों नेक ना डरत है।
परम सुलाहिजा कों त्यागि तासों दूरि भागि,
आदर सों तोहि नित्य शिरपै धरत है ॥ १२ ॥

विनिंद्यान्युन्मत्तैरपि च परिहार्याणि पतितै-
रवाच्यानि व्रात्यैः सपुलकमपास्यानि पिशुनैः॥
हरंती लोकानामनवरतमेनासि कियतां
कदाप्यश्रांता त्वं जगति पुनरेका विजयसे १३

कवित-उन्मत्तन निंदाकरे पतितन परिहरे,
व्रात्यें हू न उचरे जो पाप निज मुख सों।
पिशुन रोमांच होय त्यागिदीने जौन पाप,
तौन पाप पापियन कीने सुख सुख सों ॥
उन उन पापिनके पापताप हरती हो,
कबहुँ न डरती हो श्रमभ्रम दुख सों।

---

१ महिमा नहीं वर्णन करनेमें आनेके कारण लज्जासे । २ गुणसमूह । ३ महादेव। ४ संस्कारहीन। ५ चुगलखोरोंने ।

यासों भागीरथी ! कथी जाय नाहिं कथा तोरी,
जोरी सों विराजी जग तूँ ही एक मुख सों ॥ १३ ॥

स्खलंती स्वर्लोकादवनितलशोकापहृतये
जटाजूटग्रंथौ यदसि विनिबद्धा पुरभिदा ॥
अये निर्लोभानामपि मनसि लोभं जनयतां
गुणानामेवायं तव जननि दोषः परिणतः ॥१४॥

कवित्त–भागीरथि[1] भूतल को शोक रोकवे कों ज्योंहीं,
आई देवलोक सों तूं नरलोकमध्यमैं ।
त्योंहीं तुव गुनगन[2]भेव जान देवदेव,
महादेव बांधत भो जटाजूटमध्यमैं ।
अयि[3] जगजननि जगत इमि जाहिर[4]भो,
लोभ उपजायो निरलोभि[5]मनमध्यमैं
सोई तुव गुनन को दोष अंब[6] जग छायो,
आन न कारन पायो योगीध्यानमध्यमैं ॥ १४ ॥

---

१ हे भागीराथि । २ गुणसमूहका अभिप्राय । ३ कोमलसंबोधन । ४ प्रसिद्ध । ५ बिनालोभवालाके (शिवके) मनमें । ६ हे अंब ।

जडानन्धान्पंगून्प्रकृतिबधिरानुक्तिविकलान्
ग्रहग्रस्तानस्ताखिलदुरितानिस्तारसरणीन् ॥
निलिंपैर्निर्मुक्तानपि च निरयांतर्निपतिता
नरानंब त्रातुं त्वमिह परमं भेषजमसि ॥ १५ ॥

कवित्त–जड़ अरु अंध पुनि पांगलो पामर जन,
[1]प्रकृतिबधिर जो जो वानीहीन जन है ।
ग्रहपीडापीडित ऽरु [2]सकल दुरित,
नाशबेकों जाको मारग न कोई बुधमन है ॥
महापापी जान जौन देवतन त्यागिदीनो,
नरकपतित कीनो जौन पापीगन है ।
उन उन पापिन के तारबेकों तूं ही जग,
[3]परम [4]भेषज [5]अंब [6]बुध बुध मन है ॥ १५ ॥

स्वभावस्वच्छानां सहजशिशिराणामयमपा-
मपारस्ते मातर्जयति महिमाकोऽपि जगति ॥

---

१ स्वभावहीसे बहिरा । २ संपूर्ण पाप । ३ बाढ़ । ४ औषध । ५ हे मात । ६ संपूर्ण पंडितोंके मनोंमें ।

मुदा यं गायंति द्युतलमनवद्यद्युतिभृतः
समासाद्याद्यापि स्फुटपुलकसांद्राः सगरजाः १६

कवित्त—सहज सुभाव सुच्छ पुच्छ हंसन की जिमि,
जौन बारि शीतल संतापहारी ख्यात हैं।
उन तुव बारनकी महिमा अपार कही,
जाय न संसारमध्य ऊँची दरसात हैं॥
अमी जिमि मान तुव जल कीयो पान जौन,
ऐसे छबिमान नृप सगर के तात हैं।
देवलोक जाय सो रोमन कों उठाय माँय,
सुरन सुनाय अजों महिमा सो गात हैं॥ १६॥

कृतक्षुद्रैनस्कानथ झटिति संतप्तमनसः
समुद्धर्तुं संति त्रिभुवनतले तीर्थनिवहाः॥
अपि प्रायश्चित्तप्रसरणपथातीतचरितान्
नरान्दूरीकर्तुं त्वमिव जननि त्वं विजयसे॥१७॥

कवित्त—करि छुद्र पाप जिन बेगं ही संताप कीनो,

---

१ जल। २ विख्यात। ३ जलों की। ४ अमृत। ५ पुत्र। ६ स्वर्ग। ७ हे माता! ८ देवताओंको। ९ छोटे पाप। १० शीघ्र।

ऐसे जन तारिबे कों तीरथ घनेरे हैं।
पर महापापिन के पाप को संताप देख,
चकित चकित होय आये सो न नेरे हैं॥
पुन उन जनन निमित्त प्रायश्चित्त नाहीं,
देखि पुनि करुना[1] सों तोहि कीने चेरे[2] हैं।
इमि महापापिन उबारती जननि जग,
तेरी[3] सी तुंही बिराजी मुनि इमि टेरे हैं॥ १७॥

निधानं धर्माणां किमपि च विधानं नवमुदां
प्रधानं तीर्थानाममलपरिधानं त्रिजगतः॥
समाधानं बुद्धेरथ खलु तिरोधानमधियां
श्रियामाधानं नः परिहरतु तापं तव वपुः॥१८॥

कवित्त—सकल धरम को सुथान[4] पुनि नूतन नूतन,
हरषन को जननि जो विधान[5] है।
तीरथप्रधान[6] स्वच्छ परिधान[7] जगत को,
समाधान बुद्धि को[8] निर्बुद्धि तिरोधान[9] है॥

१ दया। २ दास। ३ अर्थात् तेरे सरीखी कोई दूसरी नदी नहीं कि जिसकी उपमा देवैं। ४ सुंदर स्थान। ५ उत्पन्न करनेवाला। ६ तीर्थोंमें मुख्य। ७ कटिके ऊपर पहननेका वस्त्र। ८ अनेक दुष्ट वासनाओंका नाश करनेवाला। ९ ढकनेवाली।

सकल संपत्ति को आधान[1] ऐसो तुव गात्र[2],
पात्र मोक्षसंपदा को मुनि कियो गान है।
ऐसी तुव मूरति की सूरति मो चित्त बस,
हरहु संताप जो नरक को निदान[3] है ॥ १८ ॥

पुरो धावंधावं द्रविणमदिराघूर्णितदृशां
महीपानां नानातरुणतरखेदस्य नियतम् ॥
ममैवायं मन्तुः सुकृतशतहंतुर्जडधियो
वियोगस्ते मातर्यदिह करुणातः क्षणमपि॥१९॥

कवित्त–द्रव्यरूपमद सों घूमत जांके बांके नैन,
बैन न कहत जो सनेह के सुखन सों।
ऐसे भूपगनें[4] आगे दौरि दौरि धूप छाँह,
नाँह गिनी जननि! सहारी निज तन सों ॥
इमि सुकृतन[5] के शतनें[6] कों हवन करि,
परम प्रचंड खेद गिन्यो नहीं मन सों।

१ स्थापन करनेवाला। २ शरीर। ३ कारण। ४ राजाओंका समूह।
५ पुण्योंके। ६ सैंकडों।

तोहि सों वियोग कियो मेरो ही यो अपराध,
ताहि छमि छनक करहु कृपा मन सों ॥ १९ ॥

मरुल्लीलालोलल्लहरिलुलितांभोजपटली
स्खलत्पांसुव्रातच्छुरणविसरत्कौंकुमरुचि ॥
सुरस्त्रीवक्षोजक्षरदगरुजंबालजटिलं
जलं तेऽजंबालं मम जननजालं जरयतु॥२०॥

कवित्त-शिशिर समीर की जो सरर सरर गति,
तासों लोल लहरीरु तासों कंजकलियां ।
तासों झरी केसर सों कुंकम छबीली पीली-
पीली भई जलन की रुचि भली भलियां ॥
सुरसीमंतिनीनके कनककलशसम,
कुचनके अगर गिरेसों छवि फलियां ।
ऐसो तुव जल कलिमल हरो मेरो मात!
पुनि जगजननि! जननजाल जलियां ॥ २० ॥

---

१ ठंढा वायु । २ हिलीहुई । ३ कमलकी कलियां । ४ शोभा । ५ अच्छी अच्छी । ६ देवांगनाएँ । ७ सुवर्णकलशके तुल्य । ८ जन्म-मरणरूप जाल । ९ जलाओ ।

समुत्पत्तिः पद्मारमणपदपद्मामलनखा-
न्निवासः कंदर्पप्रतिभटजटाजूटभवने ॥
अथायं व्यासंगो हतपतितनिस्तारणविधौ
न कस्मादुत्कर्षस्तव जननि जागर्ति जगति २१

कवित्त–हे जननि! जैनि तुवं कमलौरमणपद-
कमल के चंद्रसम निरमल नख सों।
अरु तुव बास खास कंदर्प के दर्पहारी-
जटाजूटभवन के मध्य सुठि सुख सों ॥
पुनि हत पतितन जन तारबे कों तुव,
गायो है उद्योग योगधारियन सुख सों
याही सों प्रताप आप कोई सारे जगत मैं,
सब सों अधिक जाग्यो कैसैं नहीं? सुख सों ॥२१॥

नगेभ्यो यांतीनां कथय तटिनीनां कतमया
पुराणां संहर्तुः सुरंधुनि कपर्दीऽधिरुरुहे ॥

---

१ उत्पत्ति। २ लक्ष्मीपतिके चरणकमल। ३ कामदेवके अभिमानको दूर करनेवाला अर्थात् शिव। ४ जटाजूटरूप मंदिर।

कृया च श्रीभर्तुः पदकमलमक्षालि सलिलै-
स्तुलालेशो यस्यां तव जननि दीयेत कविभिः २२

कवित्त—अयि जगजननि कहहु क्यों न मोसों गंग,
नेगनसों आई जौन जौन जग नदियां।
तामैं नदी कौन जौन त्रिपुरसंहारीजटा—
जूटमध्य बसि रही अयि सुरनदियां। ॥
पुनि जो भवहरन रमारमनचरन—
कमल प्रछाल्यो ऐसी कौन भई कदियां ?।
जामैं तुव उपमा को लेश देय कविगन,
बानी कों सफल करि पावै कांव्यहदियां ॥ २२ ॥

विधत्तां निःशंकं निरवधि समाधिं विधिरहो
सुखं शेषे शेतां हरिरविरतं नृत्यतु हरः॥
कृतं प्रायश्चित्तैरलमथ तपोदानयजनैः
सवित्रीकामानां यदि जगति जागर्ति भवती २३

१ पर्वतोंसे। २ महादेवका जटाजूट। ३ हे देवनदि। ४ विष्णुचरण-कमल। ५ कब। ६ कांव्यकी पार।

कवित्त—सकलसिरष्टि को रचयिता श्रीब्रह्मादेव,
निरवधि[1] समाधि लगावो क्यों न सुख सों।
सुखशज्या शेष पै हमेश श्रीरमेशदेव[2],
क्यों न सोवो सुखकी नींदियां ढाँपे मुख सों॥
सृष्टि के संहार को विचार त्यागि रुद्र देव,
नाचै क्यों न निरंतर कहा पर्‍यो दुख सों।
सकल मनोरथ की जननी जो तूं जगत,
जागैहै[3] तो जनकी कहा चलाई दुख सों॥ २३॥

अनाथः स्नेहार्द्रां विगलितगतिः पुण्यगतिदां
पतन् विश्वोद्धर्त्रीं गदविगलितः सिद्धभिषजम्॥
सुधासिंधुं तृष्णाकुलितहृदयो मातरमयं
शिशुः संप्राप्तस्त्वामहमिह विदध्याः समुचितम्॥ २४

कवित्त–मात! मैं अनाथ ऊर्द्धहाथ[4] स्नेहभीनी तोकों,
गतिहीन दीन तोहिं पुण्यगतिदानी[5] कों॥

---

१ जिसके दिनोंकी तादाद नहीं। २ विष्णु। ३ जब तूं जागती है तौ फिर जनोंके दुःख कैसा अर्थात् दुख नहीं। ४ उठायेहैं दोनों हाथ जिसने ऐसा मैं। ५ पवित्र गति को देनेवाली

पतित मैं विश्व कौं उधारती कौं तोकौं गंग।
अंगरोगी शोगी मैं सुसिद्धदवादानी कौं ॥
तृशनाअचेत मैं सुचेत सुधासिंधु तोकौं,
शिशु प्राप्त भयो मात ! शरणप्रदानी कौं ॥
यासों यथोचित मेरो तूँ हीं कर बाल जान,
कहा कहुँ बार बार बिलो बिलो बानी कौं ॥ २४ ॥

विलीनो वै वैवस्वतनगरकोलाहलभरो
गता दूता दूरं क्वचिदपि परेतान्मृगयितुम् ॥
विमानानां व्रातो विदलयति वीथीर्दिविषदां
कथा ते कल्याणी यदवधि महीमंडलमगात् २५

कवित्त-अयि जगजननि ! कल्यानी कथा ज्योंहीं तुंव,
आई महीमंडलरु गाई जन जन सों।
त्योंहीं धर्मराज हो नराजमन बैठि रह्यो,
नगरकोलाहल विलीनँ सुन कँन सों ॥
बही कौं बहाई अरु स्याही कौं ढुलाई,

१ सिद्धदवाको देनेवाली। २ अमृतसमुद्र। ३ बालक। ४ शरणको देनवाली। ५ बिलोय कर बिलोय कर। ६ पृथ्वीमंडलमें। ७ शांत। ८ कानोंसे।

चित्रगुप्त नै बगाई है कलम निज कर्न सों।
दूत अनपूत से है दूर गये नंदलाल!,
नोंकबीथी चीथी है बिमाननके गन सों ॥ २५ ॥

स्फुरत्कामक्रोधप्रबलतरसञ्जातजटिल-
ज्वरज्वालाजालज्वलितवपुषां नः प्रतिदिनम् ॥
हरन्तां सन्तापं कमपि मरुदुल्लासलहरि-
च्छटाचंचत्पाथःकणसरणयो दिव्यसरितः ॥२६॥

कवित्त-दिनप्रति अतिदीप्त काम क्रोध सों जनित,
जो जटिलज्वरज्वालाजालन को गर्न है।
तासों भयो दग्ध अंग ऐसो जो मैं हूँ अपंग,
मेरो बार बार यो ही मांगन कों मन है॥
जो न हर्‍यो गयो औषधन सों संताप अति,
सोई हरबे कों नीके जगत न अने है।

---

१ धर्मराजका दिवान। २ कानसे। ३ श्रीगंगाजीके होते दूतोंके भयको गया जानकर यह प्रसन्नतासे अपना संबोधन आप देताहूं। ४ स्वर्गगली। ५ विमानोंका संमूहसे। ६ उत्पन्न। ७ शिखावाला। ८ समुह। ९ अन (दूसरा)।

सुरसरि के समीरसंग सों लसे तरंग,
वांकी बांकी छेटा सों सलिलकनगन है ॥ २६ ॥

इदं हि ब्रह्मांडं सकलभुवनाभोगभवनं
तरंगैर्यस्यांतर्लुठति परितस्तिंदुकमिव ॥
स एष श्रीकंठप्रविततजटाजूटजटिलो
जलानां संघातस्तव जननि तापं हरतु नः ॥२७॥

कवित्त–अहो सारे भुवनको भोगभौन बिरह्मांड,
जाके मध्य लोटत है तरंगन नेरो है ।
उपमा बनाइ गाइ इमि बुधराज याकी,
तिंदुक को फलको ज्यों चारों ओर फेरो है ॥
सो यो नीलकंठकेरी जटाजूट सों जटिल,
जलनसंघात मात! तापहारी मेरो है ।
यासों नंदलाल तुव जलसंघमैं निशंक,
नित लोट खोटनकों खोय भयो चेरो है ॥ २७ ॥

---

१ गंगाजीके । २ वायु संग । ३ परंपरा । ४ जलकणोंका समूह । ५ भोग स्थान । ६ जगन्नाथजी । ७ खिन्नू । ८ जलोंका समूह । ९ जब ब्रह्मांड जलमैं लोटता है तो ब्रह्मांडमें होनेके कारण मैं नंदलाल भी जलमें लोटता हुआ आपका चेरा होगया ।

त्रपंते तीर्थानि त्वरितमिह यस्योद्धृतिविधौ :
करं कर्णे कुर्वंत्यपि किल कपालिप्रभृतयः ॥
इमं तं मामंब त्वमियंमनुकंपार्द्रहृदये
पुनाना सर्वेषामघमथनदर्पं दलयसि ॥ २८ ॥

कवित्त-जिस को उधार करबे के बार तीर्थराज,
कीये लाज बेग ही सों दूर दूर भाजे हैं।
अरु शिव सनकादि कनक भनक होत,
कान धर करें डर दूर जा विराजे हैं ॥
ऐसें इस मेरो महापापी को उधार कर,
जासों तुव भुज मात ! सब सों दराजे हैं।
अयि दयारंगभीनी गंग ! मोहि तारती नै,
तोहि उन सर्वन के गर्वनकों लाजे हैं ॥ २८॥

श्वपाकानां व्रातैरमितविचिकित्साविचलितै-
र्विमुक्तानामेकं किल सदनमेनःपरिषदाम् ॥

---

१ हाथ। २ लंबे [उद्धार करनेके कारण]। ३ तीर्थ और शिव आदि कोंका उद्धार करनेका गर्व (अभिमान) हे गंगे ! तैंने लाज्जित करादिया है।

अहो मामुद्धर्तुं जननि घटयंत्याः परिकरं
तव श्लाघां कर्तुं कथमिह समर्थो नरपशुः॥२९॥

कवित्त–यासों परै करणी पाप नाहीं जगत मैं,
ऐसो संशैवान[1] जौन चंडालां को गन है ।
तांके त्यागेमाहिं सों जो मैं ही एक पापन को,
घररूप जग जान्यो महापापियन है ॥
ऐसे मेकों-पापीकों उधारवेकों परिकर[2],
रचती की तुव श्लाघा[3] कस करै मन है ।
मेरो सो जो श्लाँघा करै तौ वाही नरनमध्य,
क्यों न गिनै पशुसम कविजनगन है ॥ २९ ॥

न कोऽप्येतावंतं खलु समयमारभ्य मिलितो
यदुद्धारादाराद्भवति जगतो विस्मयभरः ॥
इतीमामीहांते मनसि चिरकालं स्थितवती-
मयं संप्राप्तोऽहं सफलयितुमंब प्रणयनः ॥ ३० ॥

कवित्त–ऐसो महापातकी न ओजौं मिल्यो जगत मैं,
जाके तारिबे सों होय इचरज भारी सो ।

१ संदेहवाला । २ कमरबंधा । ३ बडाई ।

बहु काल बीत्यो न नचीती हुई पापी पाय,
निशदिन इमि ध्याय मौन धऱ्यो भारी सो ॥
ऐसी तुव इच्छा पूरबेके काल नंदलाल,
प्राप्त भयो चरणन महाअघकारी सो ।
यासों मोकों तार निजइच्छा पूरी करडार,
कीजै ना विचार अब मेरी कृपाबारी सो ॥ ३० ॥

श्ववृत्तिव्यासंगो नियतमथ मिथ्याप्रलपनं
कुतर्केष्वभ्यासः सततपरपैशुन्यमननम् ॥
अपि श्रावंश्रावं मम तु पुनरेवंविधगुणा-
नृते त्वत्को नाम क्षणमपि निरीक्षेत वदनम् ३१

कवित्त–कूकर की वृत्ति धार माय ! फिऱ्यो द्वार द्वार,
अरु नित्य मिथ्या भाख्यो पार नहिं राख्यो है ।
कुतर्क अभ्यास कर दुर्नरक कमाय लीनो,
चुगलीकी चिंता कर पापफल चाख्यो है ॥
ऐसो मम अवगुन सुन सुन कुन कुन,
दूर भयो नाहिं जाहिं खोटो वाक्य भाख्यो है ।

---

१ पाका क्रम (ओसरा) । २ कुत्ता ।

ऐसो दयाधारी मा री तेरे बिना कौन जानै,
छनक हू मेरो मुख निरख ले राख्यो है ॥ ३१ ॥

विशालाभ्यामाभ्यां किमिह नयनाभ्यां खलु फलं
न याभ्यामालीढा परमरमणीया तव तनुः ॥
अयं हि न्यक्कारो जननि मनुजस्य श्रवणयो-
र्ययोर्नान्तर्यातस्तव लहरिलीलाकलकलः ॥३२॥

कवित्त–बडे बडे नैननको फल कौन जो जगत,
जननि ! न देख्यो अतिरम्य[1] तुव अंग है ।
अरु जिन जननके कानन समायो नाहिं,
तुव लहरीन को मा ! कलकल ढंग है ॥
उन उन नैननरु श्रवनकों धिग धिग,
पुनि उन जनन कों जासों यांको संग है ।
तुव तनु गुन्यो मन ऊर्मिरव[2] सुन्यो कन[3],
यासों मात गंग मोकों कैसे नहिं रंग[4] है ॥ ३२ ॥

१ बहुत सुंदर । २ तरंगोंका शब्द । ३ कानोंमें । ४ स्याबास ।

विमानैः स्वच्छंदं सुरपुरमयं ते सुकृतिनः
पतंति द्राक् पापा जननि नरकांतः परवशाः॥
विभागोऽयं तस्मिन्नशुभमयमूर्त्तौ जनपदे
न यत्र त्वं लीलादलितमनुजाशेषकलुषा॥३३॥

कवित्त-सुकृती विमानमध्य मान सों विराजमान,
इच्छाअनुसार सुरपुर कों सिधारैं हैं।
हे जननि! पापिन कों यमदूत बांधि बांधि,
नरकनमध्य बेग बेग ही सों डारैं हैं॥
परंतु व्याहार यो अभागे उन देशन मैं,
जहां पापहारी मा री आप ना पधारैं हैं।
जंहां पापहारी जगतारी तुव वारी ह्वै है,
व्हांके जन इंद्रवन कैसैं ना सिधारैं हैं? ॥ ३३ ॥

अपि घ्नंतो विप्रानविरतमुशंतो गुरुसतीः
पिबंतो मैरेयं पुनरपि हरंतश्च कनकम्॥
विहाय त्वय्यंते तनुमतनुदानाध्वरजुषा-
मुपर्यंब क्रीडंत्यखिलसुरसंभावितपदाः॥ ३४ ॥

कवित्त-जौन महापापी नित्य विप्रन कों मारत हैं,
अरु सेज धारत हैं माता सी गुरानी को।
अरु मंदपान कर कुलकान बोरत हैं,
चोरत हैं हेम नहिं प्रेम जाके प्रानीको॥
ऐसे महापातकी जननि!'जन तोरे बीच,
अंत समै देह त्यागि पुनि सुरथानी को।
नीचै छांडि महादानी यज्ञीन के लोकन मैं,
जाय माय! रमैं हैं या फल तुव पानी को॥ ३४॥

अलभ्यं सौरभ्यं हरति सततं यः सुमनसां
क्षणादेव प्राणानपि विरहशस्त्रक्षतभृताम्॥
त्वदीयानां लीलाचलितलहरीणां व्यतिकरात्
पुनीते सोऽपि द्रागहह पवमानस्त्रिभुवनम्॥ ३५॥

कवित्त-जौन वायु फूलनकी गंधकों हरत नित,
अरु छनमाहिं विरहिन प्रानहारी है।
सोई वायु तोरी लीलालहरीनसंग पाय,
करत पवित्र माय! त्रिभुवन भारी है॥
यासों बडो अचरज कैसें न जगतमध्य,

चोर प्राणहारी तोहिं छुवत उद्धारी है।
जब तुव सेवीन की ऐसी है अकथ कथा,
तब तोरी महिमा तौं कैसैं जा उचारी है॥ ३५॥

कियंतः संत्येके नियतमिह लोकार्थघटकाः
परे पूतात्मानः कति च परलोकप्रणयिनः॥
सुखं शेते मातस्तव खलु कृपातः पुनरयं
जगन्नाथः शश्वत्त्वयि निहितलोकद्वयभरः॥३६॥

कवित्त–कितेक मानुष नित लोगन के कार्य साधि,
परलोकभोग भोगिवे कों भये नेरे हैं।
अरु कितनेकननैं तपसों पवित्र होय,
इंद्रलोक जाय माय! नीके कीने डेरे हैं॥
पर उन द्वैविध जनन को मा!१ साथ त्यागि,
नंदलालनै तौ सब झगरे निबेरे हैं।
अरु दोऊ लोकन को भार धांर तोरे मध्य,
तोरी ही कृपा सों कीने नींदमें बसेरे हैं॥ ३६॥

---

१ अर्थात् हे मात! तुझपर सब भार धरके सुखकी नींद सोता हूं।

भवत्या हि व्रात्याधमपतितपाखण्डपरिष-
त्परित्राणस्नेहः श्लथयितुमशक्यः खलु यथा ॥
ममाप्येवं प्रेमा दुरितनिवहेष्वंब जगति
स्वभावोऽयं सर्वैरपि खलु यतो दुष्परिहरः॥३७॥

कवित्त—संसकारहीन अरु अधम शवन खंड—,
खंड तारबे कों अंब जैसो प्रेम तेरो है ।
दानीजगफाँसी पापराशी के करन मांहि,
तैसो ही तौ मेरो प्रेम गंग! अंगनेरो है ॥
सो सो प्रेम तोसों अरु मोसों छूटबेको नांहि,
ब्रह्मदेव भेव पाय कीनो यों निबेरो है ।
अहो यो सुभाय कभों काहू सों न तज्यो जाय,
वेदरु पुरान सुठि बार बार हेरो है ॥ ३७ ॥

प्रदोषातर्नृत्यत्पुरमथनलीलोद्धतजटा-
तटाभोगप्रेंखल्लहरिभुजसंतानविधुतिः ॥
बिलक्रोडक्रीडज्जलडमरुटंकारसुभग-
स्तिरोधत्तां तापं त्रिदशतटिनीतांडवविधिः ३८

१ मुरदोंके ।

कवित्त-प्रेम सों प्रदोषमध्य नृत्यकारी शिवजीनै,
लीला सों उठाई जटा तासों लोल लहरी ।
सोई भुजहिलनो है जामैं ऐसो पुनि जल—
विलवड़नो है जामैं डैरू धुनि गहरी ॥
अदितिनंदनन की नदी की सो नृत्यविधि,
हरहु संताप पापराशि मोरी गहरी ।
आन न उपाय मम मोक्ष को जगतमध्यं,
हेरि हेरि हारि शर्न कीनी गंग ! तुँह री ॥ ३८ ॥

सदैव त्वय्येवार्पितकुशलचिंताभरमिमं
यदि त्वं मामंब त्यजसि समयेऽस्मिन्सुविषमे ॥
तदा विश्वासोऽयं त्रिभुवनतलादस्तमयते
निराधारा चेयं भवति खलु निर्व्याजकरुणा ३९

कवित्त-सकल समय मध्य तोरेही मैं क्षेमचिंता-,
भार धार भयो मैं नचीत जीत जग री ।।
पर कहा कीजै कैसैं पीजै तुव वारि नित्त,

चित्त चढे खल काम क्रोध महाठग री ! ॥
ऐसे इस विषम समयमध्य मोकों मात !
त्यागि है तौं तोरी बात जाय जग सगरी ।
त्रिभुवनतल सों विश्वास जागो तुव अरु,
परैगी निर्व्याजदया निराधारमग[1] री ! ॥ ३९ ॥

कपर्दादुल्लस्यप्रणयमिलदर्धांगयुवतेः
पुरारेः प्रेंखंत्यो मृदुलतरसीमंतसरणौ ॥
भवान्या सापत्न्यस्फुरितनयनं कोमलरुचा
करेणाक्षिप्तास्ते जननि विजयंतां लहर्यः ॥ ४० ॥

कवित्त—प्रेम सों विराजमान आधे अंग उमा जाके,
ऐसे शिवजी के जटाजूटभारबीच सों ।
झिर झिर कोमलसीमंतमग आवती की,
कथा कौन कहै तुव कविगनबीच सों ॥
उमानै सौतनभाव मन आन ज्योंही निज,
नैनबान तान कर फेंक्यो तनबीच सों ।

[1] निराधार मार्ग ।

त्योंहीं तुव जननि! उमंग उठी लहरी जो,
सो विजय पाओं सब नदियनबीच सों ॥ ४० ॥

प्रपद्यंते लोकाः कति न भवतीमत्रभवती-
मुपाधिस्तत्रायं स्फुरति यदभीष्टं वितरसि ॥
शपे तुभ्यं मातर्मम तु पुनरात्मा सुरधुनि
स्वभावादेव त्वय्यमितमनुरागं विधृतवान् ॥४१॥

कवित्त–सकलसरिनमध्यपूज्य! तोमैं सुरसरि!
कौन कौन जन नहिं स्नानकों पधारैं हैं ।
कारण है जासों माय! बांछित फलन पाय,
इतर जनन को उधार करडारैं हैं ॥
मैं तौ मेरो मत माय! साच सों दिखाय कहुँ,
सौगन कों खाय जिमि अरज गुजारैं हैं ।
सहजसुभाय जो अमीत प्रीत तोमैं मोरी,
तोरी ही या कृपा गंग! शिरपै ले धारैं हैं ॥ ४१ ॥

ललाटे या लोकैरिह खलु सलीलं तिलकिता
तमो हंतुं धत्ते तरुणतरमार्तण्डतुलनाम् ॥

१ हे सब नदियोंमें श्रेष्ठ! २ हे देवनदि!

विलुंपंती सद्यो विधिलिखितदुर्वर्णसरणिं
त्वदीया सा मृत्स्ना मम हरतु कृत्स्नामपि शुचम्

कवित्त–मात! तुव रज अजं आदि जाकी बाछां करैं,
क्रीडा ही सों माथपै चढाई, सोई जन सों।
तरुण प्रचंड मारतंड तुलना कों सोई,
धारि तम हरबे कों भई साँचे पन सों॥
अरु चतुराननै भली चतुराई कर,
जौन खोटी अंकमाल भाल लिखी मन सों।
ताहि कों मिटावती जगावती सुकर्मन कों,
सोई रजकन मम हरो पाप छन सों॥ ४२॥

नरान्मूढांस्तत्तज्जनपदसमासक्तमनसो
हसंतः सोल्लासं विकचकुसुमव्रातमिषतः॥
पुनानाः सौरभ्यैः सततमलिनो नित्यमलिनान्
सखायो नः संतु त्रिदशतटिनीतीरतरवः॥४३॥

१ ब्रह्मा आदि।

कवित्त-जौन गंगातीरतरु फूलनको मिस कर,
देशनमैं राचे मूढ जनन कों हँसें हैं।
पुनि निज सौरभ सों मलिन अलिन कों जो,
करिकै पवित्र साथ मित्रसम बसें हैं॥
उन उन तरुन की बात पारिजातपात-
पात कह कह नीचे नीचे कोई धसें हैं।
सोई सुरतटिनीके तीरतरु सखा होय,
मन मेरै बेसा जिमि ध्रुव नभ बसें हैं॥ ४३॥

यजंत्येके देवान्कठिनतरसेवांस्तदपरे
वितानव्यासक्ता यमनियमरक्ताः कतिपये॥
अहं तु त्वन्नामस्मरणभृतिकामस्त्रिपथगे
जगज्जालं जाने जननि तृणजालेन सदृशम् ४४

कवित्त-अतिशय कठिन है जांको सेव ऐसे देव—
गन कों कितेक जन नेम सों पूजत हैं।
अरु कितनेकननै जज्ञभारो शिर धारो,
आन जनं यम नेम राचे ही पचत हैं॥

मैं तौ तुव नाम को स्मरनकाम शिर धाऱ्यो,
यासों गंगे! गंगे! नित जिह्वापै बसत हैं।
याही सों त्रिपथगे! जननि! गंग! जगजाल,
जान तृणजालसम भे हम मसत हैं॥ ४४॥

अविश्रांतं जन्मावधिसुकृतजन्मार्जनकृतां
सतां श्रेयः कर्तुं कति न कृतिनः संति विबुधाः।
निरस्तालंबानामकृतसुकृतानां तु भवतीं
विनाऽमुष्मिँल्लोके न परमवलोके हितकरम् ४५

कवित्त—मानुष जनम धार कीनो जांनैं पुण्यभार,
ऐसे जन तारिबे कों देव नहिं थोरे हैं।
पर जांनैं सुकृत न कीनो दान दीनो नाहिं,
ऐसे जन निजलांभमाँहिं भये भोरे हैं॥
रह्यो ना आलंब अंब! ऐसे इन जनन कों,
तारिबे कों तुव बिना कोउ नाँहि जोरे हैं।
यासों तूं हीं मन आन कल्यानकी खान जान,
जाने तुव चरन शरन जग मोरे हैं॥ ४५॥

पयः पीत्वा मातस्तव सपदि यातः सहचरै—
र्विमूढैः संरंतुं क्वचिंदपि न विश्रांतिमगमम्॥
इदानीमुत्संगे मृदुपवनसंचारशिशिरे
चिरादुन्निद्रं मां सदयहृदये शायय चिरम्॥४६॥

कवित्त—प्यासहेत पय पीयो मनमैं न भाव कीयो,
पुनि दौरि दौरि संग साथियन रम्यो मैं।
केवल कलेश बिना सुखको न लेश पाय,
विश्राम न लह्यौ गंग! भृंगसम भ्रम्यो मैं॥
शीतल सुगंध अरु मंद वायुसों शिशिर,
ऐसो तुव उतसंग गंग! सोवे कम्यो मैं।
यासों अब दयाधारी मा! री! मोहि मत त्याग,
भाग सों यो लह्यो कह्यो मान नींददम्यो मैं॥ ४६॥

बधान द्रागेव द्रढिमरमणीयं परिकरं
किरीटे बालेंदुं नियमय पुनः पन्नगगणैः॥

१ गोद। २ इच्छा कम्यो। ३ निद्रासे दुःखितहुवा।

न कुर्यास्त्वं हेलामितरजनसाधारणतया
जगन्नाथस्यायं सुरधुनि समुद्धारसमयः ॥४७॥

कवित्त—दृढ अरु रमनीय परिकर[1] सुरनदि[2]!,
समुझि सिताबी[3] बांधि पुनि बालइंद[4] कों।
मुकुटमैं पन्नगनगन[5] सों सुधारि अरु,
दया सों कोमल कर हृदैअरबिंद[6] कों॥
आन जगजनके समान मोहिं मान मत,
कर अनादर नऊं पादअरविंद कों।
यो है नंदलाल[7] को उद्धारकाल मात! हाल,
सावधान होउ कोउ आन नाहिं जिंद[8] कों॥ ४७॥

शरच्चंद्रश्वेतां शशिशकलश्वेतालमुकुटां
करैः कुंभांभोजे वरभयनिरासौ च दधतीम्॥
सुधाधाराकाराभरणवसनां शुभ्रमकर-
स्थितां त्वां ये ध्यायंत्युदयति न तेषां परिभवः ४८

---

१ कमरबंधा। २ हे देवनदी!। ३ शीघ्र। ४ बालचंद्र। ५ सर्पोंकि समूह। ६ हृदयकमलें। ७ प्रसिद्ध महापापी। ८ प्रेतसमान।

कवित्त—शरदकुमुदबंधुके समान अरु शशि-
खंड श्वेतनागके मुकुट शोभाधारी कों।
कुंभ रु कमल वर अभय कों चारभुज-
मध्य धार बेशुमार शोभाभार धारी कों ॥
सुधाकी धाराके सम भूषन बसन धारि,
लीनो है सँवारि श्वेतमगर सवारी कों।
ऐसे तुव रूपकों जो ध्यान कर हृदै धारैं,
सो क्यों नहिं टारै निज अनादरबारी कों ॥ ४८ ॥

दरस्मितसमुल्लसद्वदनकांतिपूरामृतै-
र्भवज्वलनभर्जितानर्निशमूर्जयंती नरान् ॥
चिदेकमयचंद्रिकाचयचमत्कृतिं तन्वती
तनोतु मम शंतनोः सपदि शंतनोरंगना ॥४९॥

छन्द—मंदहास सों लस्यो मुखारविंदकांतिपूर,
सो सुधा सराहिबे जो गंग को विख्यात है।
तासों भौज्वलन्नमैं भुने जगज्जनन्न कों,
जिवावती दयालुतासों ऐसि गंग मात है ॥

१ शरद्चंद्रके समान। २ अनादरका ओसरा।

चित्स्वरूपचंद्रिकासमूह सों चमत्तकार,
नीकसों वितारकै धन्यो कृपाको हात है।
ऐसि शंतनूकि अंगना सिताबि मंगलान,
द्यो हमैं हमेश जासों होय पापघात हैं ॥ ४९ ॥

मंत्रैर्मीलितमौषधैर्मुकुलितं त्रस्तं सुराणां गणैः स्रस्तं सांद्रसुधारसैर्विदालितं गारुत्मतैर्ग्रावभिः ॥ वीचीक्षालितकालियाहितपदे स्वर्लोककल्लोलिनि त्वं तापं निरयाधुना मम भवज्वालावलीढात्मनः ॥ ५० ॥

कवित्त–मंत्रन कों मौन धान्यो औषधैं न काज सान्यो,
अरु देवगन मन त्रास मान हान्यो है।
अमृतसे जलननैं चलदियो हारि मान,
गौरुत्मसे ग्रांवनतै खंड खंड धान्यो है॥
अयि! सुरलोककल्लोलिनि! जगदंब! तोहि,
निज बीचिन सों विष्णुपादकों पखान्यो है।

१ नीलमणिसे। २ पत्थरोंने।

यासों भवज्वालावली सों भसम मोकों जान,
तोहि मम तापगन दूरसों निवार्‍यो है ॥ ५० ॥

द्यूते नागेंद्रकृत्तिप्रमथगणमणिश्रेणिनंदींदुमुख्यं सर्वस्वं हारयित्वा स्वमथ पुरभिदि द्राक्पणीकर्तु-कामे॥ साकूतं हैमवत्या मृदुलहसितयावीक्षितायास्तवांब व्यालोलोल्लासिवल्गल्लहरिनटघटीतांडवं नः पुनातु ॥ ५१ ॥

कवित्त–शिव अरु शिवानै जो द्यूत ठान्यो तामैं हस्ति-,
चर्म गण मणिश्रेणी नंदी इंदु लाये हैं।
हँसि हँसि हेरि हेरि जीति लीने हरके सो
शिवा नै सर्वस्व इमि रुद्रकों गमाये हैं॥
पुनि पुरहारी नै अपनपो लगावे ठान्यो,
शिवा मन आन्यो जिमि गंगा दासी पाये हैं।
गंगे! तोहि हरमन द्यूतसों उडावे अरु,
नृत्यमैं लगावे ऊर्मितांडव जगाये हैं॥ ५१ ॥

विभूषितानंगरिपूत्तमांगा
सद्यः कृतानेकजनार्तिभंगा ॥

मनोहरोत्तुंगचलत्तरंगा
गंगा ममांगान्यमलीकरोतु ॥ ५२ ॥

कवित्त—भूषित कियो है जानै शिवशिर ऐसी अरु,
सहज सिताबी जान जनपीडाहारी है ।
मनहर ऊँचे ऊँचे चलत तरंग जाके,
वांकी झांकी कर नाकनिश्रेणी निदारी है ॥
दरश परश अरु ध्यान सों ही कलिमध्य,
जानैं मोसे पापिन की पंक्ति कों उद्धारी है ।
सोई गंगा मम अंगा निरमल करो जासों,
मात बिना तात की ना आनसों जिवारी है ॥ ५२ ॥

इमां पीयूषलहरीं जगन्नाथेन निर्मिताम् ॥
यः पठत्तेस्य सर्वत्र जायंते सुखसंपदः ॥५३॥

दोहा—कवित्त गंगालहरि यह, चितेदै पढै सुजान ।
सो जस पावै जगत्में, सुख संपति खान ॥ ९३ ॥

...त्र । २ जीवना ।

इदं पुस्तकं मोहमय्याख्यनगर्यां भगीरथात्मज-
हरिप्रसादेन 'मुंबईवैभव' स्टीमप्रेस इत्याख्ये
मुद्रणालये मुद्रापितम् । शके १८३२,
आषाढ—शुक्लदशमी १०